शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जुलाई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

साहित्येतिहास लेखन में आलोचना के प्रतिमान की आवश्यकता

कुमारी सीमा (शोधार्थी)
भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

इतिहास निर्माण और इतिहास लेखन एक सचेत क्रिया होती है। एक संतुलित चिंतन और स्पष्ट वैचारिक समझ और भविष्योन्मुखी दृष्टि के अभाव में न इतिहास लेखन संभव है न इतिहास निर्माण। यह तथ्य जितना सामान्य इतिहास के विषय में सत्य है उतना ही साहित्येतिहास के संदर्भ में भी। लेकिन सामान्य इतिहास और साहित्येतिहास में एक मूलभूत अंतर यह है कि सामान्य इतिहास के निर्माण में विचार जहाँ सहायक कार्य करता है वहीं एक वैचारिक.प्रक्रिया होने के कारण साहित्य के इतिहास के निर्माण में विचार की मुख्य भूमिका होती है। इसलिए साहित्येतिहास लेखन में दृष्टिकोण का प्रश्न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

भूमिका

साहित्य रचना निरुद्देश्य नहीं होती। संस्कृत साहित्य में कला पर विचार करते हुए काव्य.प्रयोजन पर किया जाने वाला विचार साहित्य की इसी उपयोगिता की ओर संकेत करता है। साहित्य की यह उद्देश्यपरकता सामाजिक संबंधों से उत्पन्न होती है। जीवन से प्राप्त अनुभव और इतिहास से प्राप्त दृष्टि ही किसी साहित्यकार के भीतर एक ऐसी दृष्टि का निर्माण करती है, जिससे प्रेरित होकर वह रचना करता है। व्यापक अर्थ में साहित्येतिहासकार भी एक साहित्यकार होता है। साहित्य की गहरी समझ के अभाव में वह साहित्य का इतिहास नहीं लिख सकता। एक साहित्येतिहासकार को साहित्य का इतिहास लिखने की प्रेरणा ही उसके समकालीन समय में साहित्य के उत्थान-पतन से मिलती है। ई.एच. कार ने भी कहा है कि "हम केवल वर्तमान की आँख से ही अतीत को देख समझ सकते हैं।" साहित्य के इतिहास को किसी समाज कि समस्त संवेदनाओं का कोश कहा जा सकता है, क्योंकि साहित्य में ही युग विशेष की सामाजिक मान्यताएं, सांस्कृतिक प्रतिमान तथा जीवन के मूल्य प्रतिफलित होते हैं। शिवदान सिंह चौहान ने कहा है कि हर नई परिस्थिति में जब पुराने संबंध और विचार समाज की प्रगति को अवरुद्ध करने लगते हैं और भावी विकास की संभावनाएं समाज के गर्भ में परिपक्व होकर नए जीवन.लक्ष्यों की चेतना जगाने और नए मानव उद्धयोग और संघर्ष का आह्वान करने लगती है, उस समय मनुष्य परिस्थितियों के अन्तर्विरोध से उत्पन्न समस्याओं को समग्र रूप में समझने-सुलझाने और नई प्रेरणा और अंतर्दृष्टि पाने के लिए मानव इतिहास का नए सिरे से अध्ययन करता है। यह अध्ययन कभी निरुद्देश्य नहीं होता। इतिहास की यह उद्देश्यपरकता ही इतिहासकार से स्पष्ट वैचारिक समझ की मांग

करता है।" साहित्य के इतिहास लेखन के पीछे निश्चय ही कुछ आलोचनात्मक मानदंड काम करते हैं। इनके अभाव में साहित्य का इतिहास तथ्यों का संग्रह मात्र बनकर रह जाता है। यदि ऐसा न होता तो शिवसिंह सरोज और मिश्र बंधु विनोद का पूर्ण इतिहास ग्रंथ कहा जाता न कि सूची.मात्र बताकर उसकी उपेक्षा की जाती। हालाँकि साहित्येतिहास में आलोचनात्मक दृष्टि के विरोधी यह मानते हैं कि साहित्येतिहास लेखन में नए तथ्यों का प्रकाश में आना ही आवश्यक है अर्थात् नए कवियों या कृतियों की खोज जो अब तक प्रकाश में नहीं आए हैं उन्हें प्रकाश में लाना। यह माना जा सकता है कि साहित्येतिहास में नए-नए तथ्यों के अन्वेषण पर बल देना चाहिए, लेकिन साहित्य के इतिहास लेखन का उद्देश्य सिर्फ तथ्यों की खोज ही नहीं है, बल्कि रचना या कृति के निर्माण के पीछे कौन-सी पृष्ठभूमि उत्तरदायी थी तथा वह रचना भविष्य के लिए कौन-सी दृष्टि प्रदान कर सकती है, इन सब को एक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखना है।

साहित्येतिहास लेखन की आवश्यकता

साहित्य का इतिहास लेखन क्यों आवश्यक है या किसके लिए होता है जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो यह बात स्पष्ट होती है कि एक स्तर पर साहित्य का इतिहास लेखन विधार्थी, शोधार्थी तथा आलोचकों के लिए ही होता है। उससे उनकी साहित्य के अतीत की समझ बढती है तथा उसमे निहित विश्व-दृष्टि का वे भविष्य के लिए प्रयोग करते हैं। यहाँ अध्ययन की सीमा को धयान में रखना आवश्यक होता है। इसलिए यह निर्धारित करना आवश्यक है कि उस असीम साहित्य से क्या लिया जाए और क्या छोड़ा जाए। अन्यथा असीम साहित्य का संकलन कर साहित्येतिहास इतना विस्तार कर देगा कि उसे पढ़ा ही न जा सकेगा। इसलिए प्राय: इतिहासकार युग के कुछ ही कृति और कृतिकार को साहित्य में स्थान देता है। ऐसे में साहित्येतिहास लेखन के प्रथम सोपान पर ही आलोचनात्मक दृष्टि अपना कार्य करने लगती है। ई.एच.कार ने भी लिखा है कि "इतिहास के तथ्य मछुआरे की पटरी पर पड़ी हुई मरी मछलियाँ नहीं हैं, वे जीवित मछलियों कि तरह है जो एक विशाल तथा अगाध समुंद्र पर निर्भर करता है, मगर मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि वह समुद्र के किस हिस्से में मछली मरने का इरादा रखता है और किस ढंग से कांटों का इस्तेमाल करता है। कुल मिलाकर इतिहासकार जिस प्रकार के तथ्यों की खोज कर रहा है उसी प्रकार के तथ्यों को पायेगा।"

साहित्येतिहास : सिद्धांत और आलोचना

उत्तर आधुनिक युग में कुछ विचारक इतिहास को सिद्धांत और आलोचना से अलग करने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए एफ. डब्लु. बेट्सन ने यह दलील दी थी कि साहित्य के इतिहास में यह दिखाया जाता है कि क की उत्त्पति ख से हुई है जबकि आलोचना क को ख से अच्छा ठहराती है। साहित्य का इतिहास लेखन करते समय क की उत्त्पति ख से तो दिखाई जाती है, जैसे कबीर का हठयोग सिद्धों के हठयोग से उत्पन्न हुआ, लेकिन इसके साथ यह भी दिखाना आवश्यक है कि कबीर के काल में तुलसी, सूरदास व कबीर की रचनाएँ अपने युग के अन्य रचनाकारों से श्रेष्ठ थी, जो उस युग का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक ही काल में कई रचनाएँ होती है। साहित्येतिहासकार उन रचनाओं में अपने आलोचनात्मक प्रतिमान द्वारा कुछ

रचनाओं को युग की प्रतिनिधि रचना घोषित कर उसके काल का निर्धारण करता है। यही कारण है कि छायावाद में भी अनेक कवियों के बरक्स चार ही स्तंभ खड़े होते हैं। साहित्य का इतिहास वर्तमान का अतीत के साथ संवाद होता है। युग की आवश्यकता के अनुसार इतिहास की पुनर्व्याख्या होती है। यदि आलोचनात्मक दृष्टि कार्य न करे तो मार्क्सवादी इतिहास लेखन के समय तुलसी की महत्ता समाप्त हो जाती। रामविलास शर्मा ने अपने आलोचनात्मक प्रतिमान के द्वारा ही तुलसी के महत्त्व को बनाये रखा।

अतीत की असीम कृतियों को हम एक साथ नहीं देख सकते। साहित्य का इतिहास इस असीम कृतियों को अध्ययन की सुविधा हेतु अलग-अलग कालखंडों में विभाजित करता है। यहाँ पुन: आलोचना के प्रतिमान इतिहासकार को विभाजन का औजार प्रदान करते हैं। जैसे रामचंद्र शुक्ल ने इतिहास के काल.विभाजन के लिए सामाजिक आधार को कसौटी बनाया है, जिसे सैद्धांतिक तौर पर विधेयवाद कहते हैं। हालाँकि रेनेवेलक ने साहित्येतिहास को साहित्य की प्रगतिए परम्परा, निरंतरता और विकास की पहचान के रूप में संदर्भित किया है। साहित्य एक कलात्मक अभिव्यक्ति है। भाव की अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार अलग-अलग रूपों का प्रयोग करता है। वैसे तो आदिकाल से लेकर अबतक भावों की अभिव्यक्ति के रूप में अबतक लगातार विकास होता रहा है। ऐसे में स्पष्ट है कि साहित्य के रूप का भी एक इतिहास लिखा जा सकता है, जिसमें वस्तुनिष्ठता अधिक होगी और निजी दृष्टि का अभाव होगा। परन्तु रूप के इतिहास लेखन में समस्या तब आ खड़ी होती है जब एक ही काल में साहित्य के कितने ही रूप दिखाई पड़ते हैं।

यदि रूप के आधार पर इतिहास लिखा जाए तो वर्तमान काल को किस रूप में लिखा जाए या उपन्यास तथा अन्य रूपों को किस काल में रखा जाए एक बड़ी समस्या बनकर हमारे सामने आती है। शायद इस लिए अबतक किसी ने भी रूप का इतिहास नहीं लिखा। साहित्य इतिहास अपने साहित्य एवं साहित्यकारों के साथ उसके युग का भी इतिहास होता है जिसे रूप का इतिहास प्रस्तुत नहीं कर सकता।

निष्कर्ष

साहित्येतिहास लेखन में आलोचना के प्रतिमान की आवश्यकता प्रत्येक साहित्येतिहासकार को पड़ती है। वह अपनी जीवन.दृष्टि और रचना के विश्वदृष्टि के बिच से एक ऐतिहासिक दृष्टि की खोज कर सम्पूर्ण साहित्य का मूल्यांकन करता हैए लेकिन यहाँ एक सावधानी की आवश्यकता है की वह अपने निजी अनुभवों को तथा अपने निजी जीवन दृष्टि को जबरन साहित्य पर थोपकर उसका मूल्यांकन न करे। इसी कारण शुक्ल जी ने अपने लोकमंगल के अवधारणा के कारण छायावाद को महत्त्व नहीं दिया। यदि वे रचना के आंतरिक यथार्थ को देखते तो उसके साथ सही न्याय कर पाते। इसलिए यह आवश्यक है कि साहित्येतिहास लेखन के समय इतिहासकार को पूर्वग्रह से रहित होकर रचना के सभी पक्षों का मूल्यांकन करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 इतिहास क्या है, ई.एच.कार, पृष्ठ 16, मैकमिलन पब्लिकेशनए इंडिया

2 साहित्य की समस्याएं, शिवदान सिंह चौहान, पृष्ठ, 40, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

3 इतिहास क्या है, ई. एच. कार., पृष्ठ 15,
मैकमिलन पब्लिकेशन, इंडिया
4 साहित्य-सिद्धांत, रेनेवेलक, अनु. बी.एस.पालीवाल,
पृष्ठ 53, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000